THE ECONOMIC TIMES

Date: 07-03-25

Appraisers, Know What You Appraise

ET Editorials

In his essay, "The Bureaucratic Caste System', former IAS officer and Padma Bhushan recipient M N Buch likened India's bureaucracy to caste hierarchy: IAS as brahmins, IPS kshatri. yas, general bureaucracy as vaishyas, and teachers and scientists as shudras. This unwritten 'caste system' was debated in the Supreme Court this week when a challenge to the MP government's 2024 order on performance appraisal reports (PAR) for forest officers came up. The order mandates district- level forest officers-divisional forest officers, conservators and chief conservators-be appraised by district magistrates (DMs) and divisional commissioners (DCs), both IAS officers.

MP forest officers contend IAS officials lack technical expertise to judge them. Their priorities-like revenue from mining may also conflict with those of forest officials, whose primary mandate is conservation. Thus, appraisals risk being flawed. Forest officers further asserted that inclusion of non-forest officers in the evaluation of forest-related work is legally and administratively unsound. They highlighted that a situation may arise where senior officers posted on the field like chief conservator of forests are appraised by DCs, officers of junior rank.

MP's forest officers have a valid case beyond the matter of rank. Indian Forest Service (IFS) is a specialised cadre, focused on conservation, sustainable resource management and environmental protection. Unlike policy-driven IAS roles, forest officials require expertise in ecology and forestry. While IAS officers 'specialise in generalisations', a separate command structure for IFS ensures more informed evaluations. Given the service's unique challenges, it makes sense to keep performance assessments within its ranks.

THE HINDU

Date: 07-03-25

Tyranny of numbers

Federal principles, democratic impulses are in conflict over delimitation

Editorials

The call at an all-party meeting chaired by Tamil Nadu Chief Minister M.K. Stalin, in Chennai on Wednesday, to freeze the strength of the Lok Sabha and State Assemblies for 30 years beyond 2026 might seem like pushing away a pressing problem into the distant future. The challenges in 2056, when delimitation is eventually taken up, could be far more complex than those of the last exercise, conducted after the Delimitation Commission was set up in 2002. Even if the northern States bring down the fertility rate to replacement level by that time, the grouse of the southern States, that seat share as a proportion of the total strength of the Lok Sabha will come down, will still not find redress. More. over, the imbalance in the number of electors across constituencies varies in each State. Bet- ween 2004 (the last general election before the 2008 delimitation) and 2024, the country's elec torate has grown by approximately 45%. In just over 15 years, there has been significant malapportionment in many constituencies. In Karnata. ka, Bangalore North has 3.2 million voters, while Udupi Chikmagalur, with an electorate of just under 1.6 million, has less than half that number. One solution, doubtless a partial one, could be to allow delimitation within each State, but not across the country. This would be in keeping with federal principles but might be unfair to large States that have seen a huge, disproportionate population jump over the last 50 years.

The concerns of the southern States regarding a potential unfair outcome are valid. There is a risk of losing significant representation in the Lok Sabha if population strictly governs seat allocation. However, the Constitution recognises that apportionment should be done "so far as practicable", allowing room for considerations beyond mere numbers. Mr. Stalin has expressed apprehension that if the 2026 Census data is used as the basis for delimitation, and Tamil Nadu's seat share is reduced, it would lead to "indelible injus tice". The all-party meeting rightly pointed out that Tamil Nadu is not opposed to delimitation per se, but that the process should not penalise progressive States (the entire southern region). Since delimitation has remained a contentious issue, the Union government should build a consensus on the terms of reference for the next Delimitation Commission. A transparent and inclusive approach can help restore the missing trust between the ruling party at the Centre and the non-BJP Opposition. Moreover, those advocating for an early delimitation should respect the Constitution's federal character and demonstrate flexibility in addressing regional concerns.

दैनिक भास्कर

Date: 07-03-25

क्या बड़े देश कमजोर देशों से जो चाहेंगे करवा लेंगे?

संपादकीय

व्हाइट हाउस में हुई तू-तू-मैं-मैं के बाद जेलेंस्की ने सार्वजनिक रूप से गलती मानी और एक चिट्ठी लिखकर रूस के साथ समझौते के लिए ट्रम्प से पहल करने की गुहार लगाई। दरअसल ट्रम्प ने पहले यूक्रेन को सभी किस्म की मदद निलंबित करने का ऐलान किया और फिर खुफिया सेवाओं पर भी रोक लगा दी। उसी दिन लंदन में यूरोपीय देशों की बैठक में भी अधिकांश सदस्यों ने स्वीकारा कि यूरोप ज्यादा दिन तक यूक्रेन को मदद नहीं दे पाएगा। अमेरिका बिना युद्ध में टिकना मुश्किल होगा। ट्रम्प ने अपने संसदीय उद्बोधन में बताया कि समझौते की स्थिति बन रही है। लेकिन लाख टके का सवाल यह है कि इसकी कीमत क्या होगी? और क्या तब कोई भी बड़ा देश किसी कमजोर देश से जो चाहेगा करवा लेगा? यह कूटनीति का नया व्याकरण है, जिसमें तर्क, नैतिकता और कूटनीतिक मान्यताओं का स्थान कुतर्क, सार्वजनिक धमकी और हाथ मरोड़ने के उपक्रम ले लेते हैं। ट्रम्प ने कभी नहीं चर्चा की कि रूस ने हमला क्यों किया, उलटे दावा किया कि यूक्रेन ही हमलावर है। फिर तीन साल तक रूस पर प्रतिबंध लगाने का क्या औचित्य था और यूक्रेन को मदद क्यों दी गई? और अब यूक्रेन से समझौते की मूल शर्त वहां के खनिजों पर अमेरिकी हक क्या ताकत के दम पर लूट नहीं है? कूटनीति की इस नई इबारत का शिकार कनाडा, ग्रीनलैंड, पनामा ही नहीं, शायद पूरी दुनिया होने जा रही है।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 07-03-25

पश्चिम में जीवन: आधी हकीकत आधा फसाना

आर जगन्नाथन, (लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं)

अरमान और उनसे जन्मे स्वप्न बहुत विचित्र होते हैं। वे इंसान को मुश्किल और कई बार तो असंभव या अवांछित काम करने के लिए कहते हैं चाहे लक्ष्य हकीकत से कोसों दूर मरीचिका की तरह ही क्यों न हो। अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने अवैध भारतीय प्रवासियों को हथकड़ी बेड़ी में जकड़कर सेना के जहाज से वापस भेजना शुरू कर दिया है, जिससे कई सपने धूल में मिल गए होंगे। मगर यकीन के साथ ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि कुछ ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें अमेरिका ने दूसरी बार निर्वासित किया है। वापस भेजे गए लोगों में से कई ने अवैध तरीके से 'अमरीका' और 'कनेडा' पहुंचने के लिए अपनी जमीन तक बेच दी होगी और बड़ी रकम उधार ली होगी।

उन्हें उधार चुकाने हैं और उसके लिए शायद वे एक बार फिर 'डंकी रूट से उत्तरी अमेरिका जाने की कोशिश करें इस उम्मीद में कि इस बार किस्मत साथ देगी। उधर ट्रंप 50 लाख डॉलर का गोल्ड कार्ड लेने पर अमेरिका की स्थायी नागरिकता देने का वादा भी कर रहे हैं। इसे देखकर अमीरों के अरमान और सपने एक बार फिर परवाज भर सकते हैं। पुर्तगाल, ग्रीस, माल्टा, संयुक्त अरब अमीरात (यूएई) और कई कैरिबियन देश उन लोगों को गोल्डन वीजा देते आए हैं जो संपन्न देशों (या आसपास के इलाकों में स्थायी नागरिकता हासिल करने के लिए 2 लाख से 5 लाख यूरो या इससे भी ज्यादा निवेश करने को तैयार हों। उनके बाद लाखों विद्यार्थी भी हैं, जो भारी रकम खर्च कर वहां के औसत विश्वविद्यालयों में दाखिला लेते हैं और उम्मीद करते हैं कि बाद में उन्हें उत्तरी अमेरिका, यूरोप या ऑस्ट्रेलिया में स्थायी नागरिकता मिल जाएगी।

इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि आप कैलिफोर्निया या टैक्सस पहुंचने के लिए किसी संदिग्ध एजेंट को 50 लाख या 1 करोड़ रुपये दे रहे हैं अथवा गोल्डन वीजा हासिल करने के लिए 4-5 करोड़ रुपये खर्च कर रहे हैं। जो सोचकर इतना खर्च तथा जोखिम उठाया जाता है और वहां जो मिलता है, दोनों में बहुत अंतर है, जो अमीर-गरीब के लिए एक जैसा ही होता है। फर्क केवल इतना है कि अमीर लोग कानूनी रास्ते से वहां दाखिल हो सकते हैं और संपन्न देश की जीवनशैली के जो ख्वाब उन्होंने देखे थे, उनमें तथा हकीकत में मौजूद अंतर को सपना पूरा होने की कीमत मानकर भुला सकते हैं।

किसी भी सरकार को लोगों की हसरतों और सपनों के आड़े नहीं आना चाहिए मगर हकीकत से कोसों दूर हसरतों और सपनों के इस बाजार पर अगर भारत लगाम नहीं कसता है तो वह भविष्य में वहां जाने वालों के साथ न्याय नहीं कर पाएगा। जिस तरह वित्तीय योजनाओं को गलत वादों के साथ बेचना सही नहीं माना जाता उसी तरह पश्चिम की जीवनशैली को स्वर्ग की तरह बताकर बेचने की इस हरकत पर भी लगाम लगनी चाहिए। गरीबों के सपनों का फायदा उठाने वालों पर कार्रवाई करने के अलावा सरकार को मीडिया अभियान भी शुरू करना चाहिए ताकि सबको पता चल सके कि सपनों और हकीकत में कितना फर्क है। बिचौलियों और एजेंटों को भोले-भाले ग्राहक मिल जाते हैं क्योंकि वे उनके मन में बैठे सपने पूरे करने की बात कहते हैं।

सबसे पहले तो डॉलर और रुपये का भ्रम तोड़ना होगा। 86-87 रुपये का 1 डॉलर देखकर कोई भी मान सकता है कि अमेरिका में कमाया 1 डॉलर भारत में कमाए 86-87 रुपये के बराबर है। मगर यह तभी है, जब आप डॉलर बचाकर भारत भेज रहे हैं। 1 डॉलर देकर आप अमेरिका में उतना सामान नहीं पा सकते, जो भारत में मिल सकता है। वहां रहना, किराया, आना-जाना बहुत महंगा है। इसलिए लोगों को पता होना चाहिए कि भारत और अमेरिका में रोजाना का खर्च कितना बैठता है। इसके बाद आरामदेह जिंदगी का भ्रम तोड़ा जाए। अगर आप 5 लाख डॉलर भारत में निवेश कर देते हैं तो आपको ताउम्र कुछ नहीं करना पड़ेगा और रकम भी जस की तस बनी रहेगी। साथ ही आप यहां घरेलू सहायक, बढ़ई, होम डिलिवरी, उपकरणों की मरम्मत जैसे काम अमेरिका या कनाडा के मुकाबले कौड़ियों के भाव करा सकते हैं। भारत में ढंग की सुरक्षा वाली किसी रिहायशी सोसाइटी में आप पश्चिम के मुकाबले बेहतर जीवन बिता सकते हैं। हां, वहां सरकार का दखल कम रहता है। डिजिटल

जमाने में यह दिक्कत भी कम हो रही है मगर बाबुओं से निपटना पड़े तो आप भी सोचेंगे कि काश, कहीं और रहते । पश्चिम में एक बात अच्छी है - वहां भीड़ और शोरगुल नहीं है।

तीसरी समस्या भारतीयों के साथ नस्लभेद है। डॉलर की चाह में हम इसकी अनदेखी करते हैं मगर चाहे किताबी हिंदु फोबिया हो या दफ्तरों में हिंदुओं के प्रति पूर्वग्रह, नस्लभेद तो है। अब तो अमेरिका शिक्षा जगत ने वहां हिंदुओं को निशाना बनाने का काम भारत में जाति के लिए काम करने वालों को दे दिया है। भारतीयों को हथ कड़ी में भेजकर ट्रंप ने दिखा दिया है कि अमेरिका से हमें कितनी इज्जत मिल रही है। परंतु हमारे टिप्पणीकार 'डंकी रूट' से अमेरिका जाने नालों को ऐसे अमानवीय व्यवहार की चेतावनी देने के बजाय इसका इस्तेमाल मोदी सरकार के खिलाफ कर रहे हैं। ऐसे रास्तों से अमेरिका जाने वालों की दर्दनाक यात्राओं पर मीडिया में शायद ही कभी चर्चा होती है, इसलिए गैर-कानूनी तरीकों से जाने की कोशिश कर रहे लोग हकीकत से रूबरू ही नहीं हो पाते।

चौथी भ्रांति अक्सर बॉलीवुड फिल्मों (दिल चाहता है) के जरिये किए गए झूठे प्रचार से बनी है। जब से बॉलीवुड ने गरीबी पर फिल्में बनानी बंद की हैं, वह लगातार विदेश में ही शूटिंग कर रहा है और पश्चिमी जीवनशैली के लिए भ्रांति गढ़ रहा है। देशभक्ति का एकाध गाना छोड़ दें तो बॉलीवुड पश्चिम को स्वर्ग ही दिखाता है। हमें पश्चिम में अमीरी ही दिखाई गई है। टाइम्स स्क्वैर पर घूमते भिखारी नहीं तो क्या बॉलीवुड को अब यह भ्रांति तोड़नी नहीं चाहिए?

पांचवां भ्रम हमारी औपनिवेशिक मानसिकता से जुड़ा है। भारत में हसरतें पश्चिम से इस कदर जुड़ी हैं कि हमारी इमारतों के नाम भी वहीं की तर्ज पर होते हैं। बेंगलूरु में मेरी गेटेड कॉलोनी में सभी इमारतों के नाम मैनहटन की इमारतों के नाम पर हैं। इसलिए आज रिविएरा, पाम बीच, ब्रुकलिन हाइट्स, ब्लूमिंगडेल्स जैसे नाम ही मिलते हैं। पश्चिम की श्रेष्ठ मानने वाली औपनिवेशिक मानसिकता खत्म करने के लिए गंभीर होना पड़ेगा। अगर देश का कुलीन वर्ग यह मानता है कि भारतीय छाप वाला कुछ भी अच्छा नहीं है और हर अच्छी चीज में कुछ पश्चिमी होना चाहिए तो देश कभी तरक्की नहीं कर सकता ।

पश्चिम के पीछे भारतीयों की दौड़ की वजह यह भी है कि हमारी प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा व्यवस्था बेहद घटिया है और इसे फौरन दुरुस्त करना होगा। विज्ञान, तकनीक, इंजीनियरिंग और गणित को छोड़ दें तो स्नातक में ऐसा कुछ नहीं सिखाया जाता, जो उन्हें नौकरी दिला सके। जीवन सुगम होना चाहिए और हमारी अफसरशाही को भी औपनिवेशिक खुमार से उबरकर लोगों की जरूरतें समझनी चाहिए।

मगर लोगों को यह समझाना सबसे जरूरी है कि विदेश में जिस तरह के जीवन की कल्पना वे करते हैं हकीकत उससे बहुत अलग है और वे भारत में वैसी ही जिंदगी जी रहे हैं। पश्चिमी जीवनशैली के मिथक तोड़ना बहुत जरूरी है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 07-03-25

ट्रंप, टैरिफ और विश्व

संपादकीय

अमेरिका के राष्ट्रपति डोनाल्ड ट्रंप अपने दूसरे कार्यकाल में सब को चकित करने वाले जिस तरह की फैसला ले रहे हैं उसके कारण समूचा विश्व परिदृश्य बदल रहा है। अमेरिका के पारंपरिक मित्र देश उनसे दूर होते जा रहे हैं और दूसरी और पारंपरिक शत्रु देश करीब आ रहे हैं। सब कुछ इतनी तेज गति से हो रहा है कि अमेरिका के मित्र और सहयोगी देश स्तब्ध और चिंतित हैं। इस बीच बुधवार को ट्रंप ने अमेरिकी संसद को संबोधित करते हुए भारत समेत दुनिया के कई अन्य देशों पर 2 अप्रैल से पारस्परिक टैरिफ लगाने की घोषणा की है। सिटी रिसर्च नामक संस्था के अनुमान के मुताबिक ट्रंप के इस फैसले से भारत को प्रतिवर्ष करीब 7 अरब डॉलर का नुकसान हो सकता है। सबसे ज्यादा प्रभावित होने वाले क्षेत्रों में फार्मास्यूटिकल्स,ऑटोमोबाइल, मेटल, केमिकल और ज्वेलरी हो सकते हैं। ट्रंप ने साफ तौर पर कहा है कि अमेरिकी सामानों पर भारत जितना टैरिफ लगाएगा अमेरिका भी भारतीय सामानों पर उतना ही टैरिफ लगाएगा। अंतरराष्ट्रीय वाणिज्य चैंबर ने चेतावनी जारी किया कि ट्रंप के टैरिफ से विश्व की अर्थव्यवस्था चरमरा जाएगी और 1930 की जैसी महान मंदी आ सकती है। जाहिर है यूक्रेन को लेकर ट्रंप के फैसलों के खिलाफ यूरोपीय देश एकजुट और लामबंद हो रहे हैं और अब टैरिफ में बढ़ोतरी से उनपर विपरीत असर पड़ेगा। कनाडा के प्रधानमंत्री जस्टिन ट्रूडो ने ट्रंप के टैरिफ को बेहद मूर्खतापूर्ण बताते हुए कहा कि अमेरिकी राष्ट्रपति ने रूस को खुश करने के लिए कनाडा के खिलाफ व्यापार युद्ध शुरू किया है। चीन ने भी अपनी तीखी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा है कि अमेरिका युद्ध चाहता है, चाहे वह टैरिफ युद्ध हो, व्यापार युद्ध हो या कोई अन्य युद्ध हो। यह स्पष्ट हो गया है ट्रंप 'अमेरिका फर्स्ट' के तहत संरक्षणवादी आर्थिक नीतियों को आगे बढ़ा रहे हैं, जिसका दुनिया भार की अर्थव्यवस्थाओं पर नकारात्मक असर पड़ेगा। यदि ट्रंप मानते हैं कि चीन अमेरिका के लिए सबसे बड़ी चुनौती है और इसलिए वह उसके साथ दोस्ताना संबंध काम करना चाहते हैं तो उन्हें यह भी याद रखना होगा कि हिन्द-प्रशांत क्षेत्र में

भारत की जरूरत पड़ेगी। भारत को टैरिफ से बचने के लिए बुद्धिमत्तापूर्ण ढंग से आगे बढ़ना होगा। यहां के प्रमुख निर्माताओं को अपने उत्पादन को और अधिक गुणवत्तापूर्ण बनाना होगा ताकि उनकी मांग और बढ़े।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 07-03-25

उदार त्रि-भाषा फॉर्मूले से दूर हो जाएगा भाषायी भेदभाव

अनुराग बेहर, (सीईओ अजीम प्रेमजी फाउंडेशन)

मैं भोपाल में पला-बढ़ा हूं। कई तरह की हिंदी और उर्दू से मेरा परिचय हुआ और सभी मुझे बेहद प्रिय थीं। अंग्रेजी माहौल के अनुकूल थी और मेरा स्कूल अंग्रेजी माध्यम वाला ही था। हालांकि, मेरी पहली भाषा न तो हिंदी थी और न अंग्रेजी, यह छत्तीसगढ़ी थी। मेरा परिवार चूंकि छत्तीसगढ़ के सारंगढ़ नामक छोटे से शहर से था, इसलिए हम घर में छत्तीसगढ़ी ही बोला करते । स्कूल की पढ़ाई पूरी करते-करते मैं हिंदी, उर्दू, अंग्रेजी और छत्तीसगढ़ी के कई रूपों को अपनी भाषा मानने लगा। बाद में, कॉलेज के लिए मैं तमिलनाडु में त्रिची चला गया और तमिल भाषा व संस्कृति में मेरी गहरी रुचि पैदा हुई। यहां मैंने तमिल समझना तो सीखा, लेकिन धाराप्रवाह बोल नहीं सका और अब मैं दशकों से कर्नाटक में रह रहा हूं, कन्नड़ की समृद्ध भाषायी और सांस्कृतिक विरासत के बीच ।

बचपन में मैंने देखा और हैरान भी हुआ कि छत्तीसगढ़ में मेरे रिश्तेदारों और दोस्तों में से कई हिंदी में ही बात करना पसंद करते थे, न कि छत्तीसगढ़ी में । बीतते समय के साथ मैंने जाना कि यह एक व्यापक सामाजिक परिघटना है। समझा यही जाता था कि कहीं आने- जाने, अभिजात वर्गों में उठने-बैठने या अदालत की भाषा हिंदी ही है। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ते गए या आगे बढ़ना चाहने लगे या यह दिखाने लगे कि हम पहले से ही दूसरों से आगे हैं, तो हमने अपनी सुंदर और मीठी भाषा छोड़कर दूसरी अपनाने लगे।

हम स्वयं (सभी नहीं, पर छत्तीसगढ़ के लोगों का एक बड़ा हिस्सा) पर खुद ही हिंदी थोप रहे थे हिंदी के प्रति मेरे प्रेम के बावजूद मुझे यह अच्छा नहीं लगा । निस्संदेह, इस सामाजिक-सांस्कृतिक परिघटना की कई वजहें हो सकती हैं, लेकिन उनमें से एक मुख्य बात यह थी कि हिंदी को एक भाषा के रूप में महत्व दिया जा रहा था, जबकि छत्तीसगढ़ी को बोली के रूप में। हममें से कई लोगों ने इस पदानुक्रम को स्वीकार कर लिया था। न सिर्फ

स्कूलों में हमारी शिक्षा की भाषा हिंदी थी, बल्कि छत्तीसगढ़ी को हम किनारे करने लगे थे, यहां तक कि बाद में उसके उपयोग को हतोत्साहित किया जाने लगा। जब 2000 में छत्तीसगढ़ एक अलग राज्य बना, तो इस रुख को मोड़ने की कोशिश की गई, लेकिन किसी भी सामाजिक बदलाव की तरह इसकी अपनी गति थी, जो आज भी बदस्तूर कायम है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति 2020 ने छत्तीसगढ़ी और अन्य भाषाओं के हालात में महत्वपूर्ण बदलाव की रूपरेखा तैयार की है। इसके तीन उल्लेखनीय पहलू हैं। पहला, साक्षरता की शुरुआती भाषा मातृभाषा होनी चाहिए (गौर कीजिए, इसमें भाषा बनाम बोली के भेदभाव का मसला नहीं है), क्योंकि यह शिक्षा को अधिक प्रभावी बनाती है। अगर यह व्यावहारिक रूप से संभव नहीं है, क्योंकि यह बहुत छोटे समुदाय द्वारा बोली जाती है, तो शिक्षा की भाषा बच्चे की अगली सबसे परिचित भाषा होनी चाहिए। यह सोच सिर्फ छत्तीसगढ़ में नहीं, बल्कि पूरे देश में हर भाषा को बढ़ावा देगी।

दूसरा, यदि शिक्षा मातृभाषा में नहीं मिल पा रही, मतलब किताबें उस भाषा में उपलब्ध नहीं हैं, तो शिक्षक और स्कूल मातृभाषा में पढ़ाई-लिखाई के सेतु बनेंगे। यह पूर्व की सोच से अलग है, क्योंकि हमारे समय में छत्तीसगढ़ी के उपयोग पर दंडित किया जाता था। और तीसरा, बहुभाषावाद को बढ़ावा दिया जाएगा। इसी से जुड़ा यह जवाब है कि कैसे नई शिक्षा नीति ने 'त्रि-भाषा फॉर्मूला' को बदल दिया है। असल में, नई नीति सभी मातृभाषाओं को आधिकारिक वैधता प्रदान करती है और इसके तहत किसी भी भाषा को दूसरी वा तीसरी भाषा के रूप में पढ़ाया जा सकता है। यह तथाकथित 'हिंदीभाषी राज्यों' में तीसरी भाषा पढ़ाने की चुनौती का भी समाधान है। मसलन, छत्तीसगढ़ में ही मातृभाषा होने के कारण पठन-पाठन की पहली भाषा छत्तीसगढ़ी होगी, जिसके बाद हिंदी और अंग्रेजी को दूसरी व तीसरी भाषा बनाया जा सकता है। तीसरी भाषा स्कूल अक्सर नहीं पढ़ाते थे, क्योंकि उनका जवाब होता था कि शिक्षक कहां से लाएंगे? अब, उनके पास हिंदी व अंग्रेजी शिक्षकों की शायद ही कमी होगी। यही तरीका देश के बड़े हिस्से में भी काम करेगा। हां, हमें देखना होगा कि 'हिंदीभाषी राज्य' इसका इस्तेमाल कैसे करते हैं? यदि वे इसका बेहतर उपयोग कर सके, तो यह नीति न सिर्फ हमारी भाषायी विरासत को आगे बढ़ाएगी, बल्कि शिक्षा में सुधार लाएगी।